NYAYA - CONCEPT OF SOUL

आत्मा के सम्बन्ध में न्याय मत

By- Dr. Arun Kumar Sinha
Asso. Professor, Philosophy Department
Raja Singh College, Siwan

(For Part- 1 Hons./Subs. Students)

न्याय दर्शन का आत्म संबंधी विचार वस्तुवादी विचार है इनके अनुसार आत्मा एक ऐसा द्रव्य है जिसमें बुद्धि या ज्ञान ,सुख- दुख, राग- द्वेष, इच्छा कृति या प्रयत्न आदि गुणों के रूप में वर्तमान रहते हैं।भारतीय दर्शन मैं आत्मा के संबंध में भिन्न -भिन्न मत हैं - चार्वाक के अनुसार चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है यह जड़वादी मत है। बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार आत्मा विज्ञानों का प्रवाह है ।अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मा एक है नित्य है स्वप्रकाश चैतन्य है । आत्मा न तो ज्ञाता है और न ज्ञेय है और ना अहम ही है ।विशिष्टाद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मा केवल चैतन्य नहीं है बल्कि ज्ञाता है जिसे अहम कह सकते हैं। न्याय आत्मा को स्वभावतः अचेतन मानता है आत्मा में चेतना का संचार एक विशेष परिस्थिति में होता है। चेतना के उदय तब होता है जब आत्मा का संपर्क मन के साथ तथा मन का संपर्क इंद्रियों के साथ होता है और इंद्रियों का सम्पर्क बाह्य जगत के साथ होता है ।इस तरह चेतना आत्मा का आगन्तुक लक्षण है।आत्मा शरीर से भिन्न है, शरीर को अपनी चेतना नहीं है।शरीर जड़ है परन्तु आत्मा चेतन है।शरीर आत्मा के अधीन है, अतः शरीर आत्मा के बिना क्रिया नहीं कर सकता। बाहर इंद्रियों को भी आत्मा नहीं समझा जा सकता क्योंकि कल्पना स्मृति विचार आदि मानसिक व्यापार बाह्य इंद्रियों के कार्य नहीं है। मन को भी आत्मा नहीं माना जा सकता न्याय-वैशेषिक के अनुसार मन अणु है इसलिए अप्रत्यक्ष है। मन को ही यदि आत्मा मान लिया जाए तब सुख दुख आदि मन के गुण होंगे अतः यह भी अणु अप्रत्यक्ष होंगे लेकिन हमें सुख-दुख की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है ।आत्मा को हम विज्ञानों क्या प्रवाह मात्र भी मान सकते हैं जैसा बौद्ध मानते हैं क्योंकि तब हम स्मृति की उत्पत्ति नहीं कर सकते। यदि आत्मा केवल विज्ञानों का प्रवाह मात्र हो तो किसी मानसिक अवस्था से इस बात का पता नहीं लग सकता है कि उसके पहले क्या था और उसके बाद क्या आयेगा। अद्वैतवेदांतीयों का यह मत की आत्मा स्वप्रकाश चेतन है नैयायिक नहीं मानते हैं। शुद्ध चैतन्य नाम का ऐसा पदार्थ नहीं है। चैतन्य के लिए कोई आश्रय द्रव्य होना आवश्यक है ।आत्मा ही वह द्रव्य है चैतन्य उसका एक गुण है ।आत्मा ज्ञान नहीं है बल्कि ज्ञाता है जो अहंकार का आश्रय तथा भोक्ता भी है।

न्याय दर्शन जीवात्मा को अनेक मानकर अनेकांतवाद के सिद्धांत को अपनाता है

।न्याय का यह विचार जैन और सांख्य के विचार से मेल खाता है।

न्याय का अनेकात्मवाद शंकर के आत्म विचार का निषेध करता है ।शंकर ने आत्मा को एक का मान कर एकात्मवाद के सिद्धांत को अपनाया है जबकि न्याय दर्शन आत्मा की अनंत संख्या को मानता है उसके अनुसार प्रत्येक शरीर में एक भिन्न आत्मा का निवास होता है और प्रत्येक आत्मा के साथ एक मनस रहता है मोक्ष की अवस्था में आत्मा से अलग हो जाता है बंधन की अवस्था में यह निरंतर आत्मा के साथ रहता है। न्याय दर्शन शंकर के एकात्मवाद की आलोचना करता है और वह बतलाता है की यदि आत्मा एक होती तो एक व्यक्ति के अनुभव से सबको अनुभव हो जाता तथा एक व्यक्ति के बंधन या मोक्ष से सब का बंधन या मुक्त हो जाता परंतु ऐसा नहीं होता है जिससे प्रमाणित होता है कि आत्मा अनेक है।

आत्मा के अस्तित्व के संबंध में न्याय दार्शनिकों का कहना है कि आत्मा का ज्ञान या तो आप्त वचनों से होता है या उनके प्रत्यक्ष गुणों जैसे इच्छा ,द्वेष ,प्रयत्न, सुख-दुख एवं बुद्धि से अनुमान के द्वारा होता है । हम लोगों में तो राग द्वेष वर्तमान है किंतु यदि कोई स्थाई आत्मा नहीं हुआ ता तो इसका अस्तित्व ही संभव नहीं होता किसी वस्तु को पाने की इच्छा रखने का मतलब है कि वह वस्तु सुखद है जब तक हम उसको पा नहीं लेते हैं तब तक उसे सुख नहीं मिलता है ।अतः उस वस्तु को पाने की इच्छा इसलिए रखा जाता है कि यह समझा जाता है कि ऐसी वस्तु से अतीत काल में सुख मिला था। इस प्रकार हम देखते हैं की इच्छा तभी हो सकती है जब कोई स्थाई आत्मा रहे जिसने अतीत में वस्तुओं से सुख प्राप्त किया और जो वर्तमान वस्तुओं को अतीत की वस्तुओं के सदृश्य समझ कर उन्हें पाने की अभिलाषा रखता हो। इसी प्रकार द्वेष और प्रयत्न भी बिना स्थाई आत्मा के संभव नहीं है । कोई व्यक्ति सुख तभी प्राप्त करता है जब वह कोई ऐसी वस्तु पा लेता है जिसके द्वारा वाह किसी स्मृत सुख का पुनःअनुभव प्राप्त कर सकता है ।उसे दुख तब मिलता है जब वह है किसी ऐसी परिस्थिति में पड़ जाता है जिसके कारण अतीत में उसे दुख का अनुभव करना पड़ता हो ।इसी प्रकार बुद्धि या ज्ञान के लिए भी एक स्थाई आत्मा का अस्तित्व आवश्यक है ।आत्मा सर्वप्रथम किसी विषय या उस विषय के संबंध में असंगदिग्ध ज्ञान प्राप्त करता है। इच्छा, द्वेष आदि की उत्पत्ति ना तो शरीर,न इंद्रिय और न मन के द्वारा ही हो सकती है।